ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-6* July- 2021
Innovation The Research Concept

सामाजिक आर्थिक परिवर्तन में सामन्तवाद की भूमिका (700 ई. से 1200 ई. तक)

Role of Feudalism in Socio-Economic Change (700 AD to 1200 AD)

Paper Submission: 02/07/2021, Date of Acceptance: 14/07/2021, Date of Publication: 25/07/2021

अरविन्द कुमार चौधरी
पूर्व शोध छात्र
प्राचीन इतिहास विभाग,
डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

पूर्व मध्यकाल में एक विशिष्ट वर्ग 'सामन्त' का उदय हुआ। यह समाज का एक शक्तिशाली वर्ग था। इसका पूर्ण विकास पूर्ण मध्य काल में ही हुआ। राजपूतों के सम्पूर्ण राज्य छोटे–छोटे जागीरदारों में विभक्त थे। जागीरदारों का प्रशासन सामान्तों के हाथों में था। सामन्तों को उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त किया जाता था। अधिकाधिक सामन्त रखना सम्राटों के लिए गौरव की बात थी। चहवान शासक पृथ्वीराज तृतीय के अधीन 150, कलिचुर कर्ण 136 तथा चौलुक्य कुमार पाल के 72 सामन्त थे। इस प्रकार राजा अपनी प्रजा पर प्रत्यक्ष शासन न करके सामन्तों द्वारा ही शासन करता था। सामन्तों के पास अपने न्यायालय एवं मत्रिपरिषद् होती थी। कतिपय शक्तिशाली सामन्तों के पास उपसामन्त भी थे। इस प्रकार राज्य की शक्ति एवं सुरक्षा की वास्तविक जिम्मेदारी सामन्तों पर होती थी। केन्द्रीय शासन की निर्बलता की स्थिति में सामन्त मनमाना आचरण करते थे। फलतः केन्द्रीय शासन शिथिल हो रहा था। इस प्रकार सामन्तों के बदले प्रभाव ने भी तत्कालीन प्राचीन भारतीय सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

In the early medieval period a special class 'Samant' emerged. It was a powerful section of the society. Its full development took place only in the complete medieval period. The entire Rajput kingdom was divided into small jagirdars. The administration of the jagirdars was in the hands of the commoners. The feudatories were appointed to high state posts. Keeping more and more feudatories was a hair of pride for the emperors. There were 150 feudatories under Chahavan ruler Prithviraj III, Kalichur Karna 136 and Chaulukya Kumar Pal had 72 feudatories. In this way, the king used to rule through the feudatories instead of direct rule over his subjects. The feudatories had their own courts and council of ministers. Some powerful feudatories also had sub-samantas. Thus the real responsibility of the power and security of the state was on the feudatories. In the event of weakness of the central government, the feudal lords used to behave arbitrarily. As a result, the central government was getting relaxed. Thus the influence of the feudal lords also played an important role in the socio-economic transformation of the ancient Indian society.

मुख्य शब्द : सामन्तवाद, भूमिदान, सामंत, जमींदार, कृषक, भू–राजस्व, कायस्थ, बेगार।
Feudalism, Land donation, Feudal, Zamindar, Agriculturist, Land Revenue, Kayastha, Begar

प्रस्तावना

भारतवर्ष के इतिहास में आठवीं से बारहवीं शताब्दी का काल सामन्तवादी मनोवृत्ति के चरमोत्कर्ष का काल माना जाता है।[1] यद्यपि सामन्तवाद का प्रारम्भिक सूत्रपात गुप्त सम्राटों के समय हो चुका था। हर्ष चरित में बाण ने अनेक प्रकार के सामन्तों का उल्लेख किया है जैसे सामन्त महासामन्त, अनुरक्त सामन्त, आप्त सामन्त, प्रधान सामन्त, प्रति सामन्त, कर्दीकृत सामन्त आदि।[2]

यद्यपि ग्यारहवीं शताब्दी में मुद्राओं में परिष्कार तथा व्यापार और वाणिज्य में सुधार दिखाई देता है, तथापि ये न्यून आर्थिक परिवर्तन सामन्तवाद को रोकने में समर्थ नहीं थे।[3] विवेच्य काल तक सामंती प्रथा इतनी सुप्रतिष्ठित

हो गई कि अब इसे संस्कृत ग्रंथों में भी स्थान दिया जाने लगा, यद्यपि इन ग्रंथों की प्रवृत्ति परंपरा–पोषण की थी, और ये धर्मशास्त्रों में बताई गई चार वर्णों में विभक्त सामाजिक व्यवस्था से मेल न रखने वाली किसी चीज को सहज ही स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित शोध पत्र में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन में सामन्तवाद की भूमिका को चिन्हित करने का भी प्रयास किया गया हैं।

विषय विस्तार

सामन्ती प्रथा के उदय और विकास का परिणाम भारतीय शासनपद्धति के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। गुप्तयुग के बाद के राजनीतिक विश्रृंखलन का जो चित्र उपस्थित हुआ वह बहुत कुछ सामन्ती प्रथा का ही कुफल था। विभिन्न सामन्त क्षेत्रों में बड़े–बड़े राज्यों अथवा साम्राज्यों की तरह राजदरबार, राज्याधिकारी, न्यायालय, सचिवालय, पुलिस सेना जैसे प्रशासन के अनेक तत्त्व होने लगे। परिणामतः, सामन्तगण अधिराज की शक्ति कम होते ही अपनी शक्ति और राज्यक्षेत्र बढ़ाने का प्रयत्न करने लगते थे। बहुत से राज्य तो मूलतः दान दी गयी अथवा राजकीय सेवा हेतु दी गयी भूमियों से विकसित हो जाते थे।

भूमिदान और 'सामंतोपसामन्तीकरण' की प्रक्रिया के कारण बड़े पैमाने पर भूमि और शक्ति का असमान वितरण हुआ और नये सामाजिक वर्ग और श्रेणियां बनी जिसका विद्यमान चतुर्वर्ण–व्यवस्था के साथ अधिक मेल नहीं बैठता था। मध्यकाल के विधि–ग्रन्थों में इसे नजरअंदाज कर दिया गया है। लेकिन अनेक स्थापत्य–ग्रन्थों में जन्म पर आधारित श्रेणी का, भूमि और शक्ति पर आधारित श्रेणी के साथ, सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया गया है। इसकी शुरूआत वाराहमिहिर ने की। उसने विभिन्न श्रेणी के राजाओं और चारों वर्णों के सदस्यों के मकानों का अलग–अलग आकार निर्धारित किया। ऐसे संदर्भ में पूर्वकालीन ग्रंन्थों में स्वभावतः केवल चारों वर्णों पर ही विचार किया गया होता। पूर्व मध्यकालीन ग्रंथ मयमत में कहा गया है कि भूमंडल के राजा का घर ग्यारह मंजिला, द्विजाति का नौमंजिला, साधारण राजा (नृप) का सतमंजिला, वैश्य और सेनाधिकारी का चौमंजिला, शूद्र का एक–मंजिला से तिमंजिला और सामंत–प्रमुख आदि का चौमंजिला होना चाहिए।[4] इस आवास–व्यवस्था में चारों वर्ण के साथ राजाओं और सामंतों की विभिन्न श्रेणियाँ भी वृहत्संहिता की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में रखी गई है।

कुछ ग्रन्थों में वर्णों पर विचार न कर केवल सामतों या अमीरों की पारस्परिक हैसियत पर ही विचार किया गया है। भट्ट भुवनदेव (बारहवीं सताब्दी) के अपराजितापृच्छा नामक ग्रन्थ में महामंडलेश्वर, मांडलिक महासामंत, सामंत और लघु सामंत सहित नौ श्रेणी के अमीरों (नॉबुल) के निवासों के आकार अलग–अलग उल्लिखित हुए हैं। इसमें निचली श्रेणी के कुछ अन्य लोगों के घरों का आकार भी विहित किया गया है।[5] एक विशिष्ट सामंती दरबार का वर्णन करते समय इसमें आठ श्रेणी के अधीनस्थों (वेसाल्स) की चर्चा की गई है। इसमें बताया गया है कि महाराजाधिराज परमेश्वर उपाधिधारी सम्राट् के दरबार में चार मंडलेश्वर, बारह मांडलिक, सोलह महासामंत, बत्तीस सामंत, एक सौ साठ लघुसामंत और चार सौ चतुरशिक रहने चाहिए जिनके नीचे अन्य सभी को राजपुत्र कहा गया है।[6] लघुसामंत की आय पाँच हजार सामंत की दस हजार और महासामंत की बीस हजार होनी चाहिए।[7] विभिन्न कोटियों के ये सामंत केवल क्षत्रिय हैं या अन्य वर्ण के भी यह स्पष्ट नहीं है। लेकिन एक अन्य समसामयिक ग्रन्थ मानसर बताता है कि इनमें से कम से कम कुछ श्रेणियाँ सभी वर्णों के लिये थीं। इसके बयालीसवें अध्याय में राजाओं को अवरोही क्रम (डिसैंडिंग आर्डर) और हैसियत से नौ श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम स्थान पर चक्रवर्ती को और अंतिम दो पर प्रहारक और अस्त्रग्राही को रखा गया है। इसमें राजा या अमीर की हैसियत के अनुसार विभिन्न प्रकार के सिंहासनों का वर्णन भी है।[8] इस ग्रन्थ में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि हरेक व्यक्ति, चाहे उसका वर्ण जो भी हो, सामंतीय पदानुक्रम (हाएरार्की) की दो निचली सैनिक श्रेणियाँ, यानी प्रहारक और अस्त्रग्राही की श्रेणियाँ, प्राप्त कर सकता था। न्यूनतम श्रेणी का होने पर भी अस्त्रग्राही पांच सौ घोड़ों, पांच हजार हाथियों, पचास हजार सैनिकों, पांच हजार परिचारिकाओं और एक रानी का हकदार था।[9] यह ग्रन्थ साफ तौर पर वर्ण विचार से परे है और इस प्रकार भूमि और शक्ति के नए विभाजन के आधार पर, उभरती हुई सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की बुनियाद कायम करता है।

चतुर्वर्ग पर आधारित सामाजिक अनुक्रम (हाएरार्की) बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा में प्रतिबिंबित होता है जो इसकाल में पूर्वोत्तर भारत में प्रचलित थी। इसके देवगण (पेंथियन) का ढांचा पिरामिडनुमा है जिसकी नींव में पच्चीस बोधिसत्त्व हैं। इनके ऊपर सात मानुषी या मर्त्य बुद्ध हैं जिनके ऊपर पाँच ध्यानी बुद्ध और सबके ऊपर उत्तम वस्त्राभूषण से सुसज्जित सर्वशक्तिमान वज्रसत्त्व है।[10] इस पूरे तथ्य से स्पष्ट रूप से एक दैवी सामाजिक स्तरावली की झलक मिलती है जिसमें बौद्ध देवताओं की चार सीढ़ियाँ हैं।

भूसम्पन्न कुलीनों (जेन्ट्री) के अपेक्षाकृत उच्च प्रवर्ग का सामाजिक व्यक्तित्व शक्ति के अनेक बाह्य प्रतीक और चिह्नद्वारा प्रकट होता था। दक्कन में भूमिदान के साथ कभी–कभी उन्हें ललाट पर सम्मानक चिह्न (बैज) भी लगाए जाते थे। समग्र रूप से, देश में अधीनस्थों को सामान्यतः छत्र–चंवर, घोड़ा, हाथी, पालकी, आदि से विभूषित किया जाता था। इनमें भी जो सर्वाधिक पराक्रमी होते उन्हें पाँच वाद्य–यंत्र[11] उपयोग करने की शक्ति प्रदत्त की जाती थी जो ऐसा विरल विशेषाधिकार था जिसका उपभोग केवल अधिराट् (सॉवरेन) ही कर सकता था। चक्रवर्ती, महासामंत और सामंत को सिंह द्वार[12] बनाने की अनुमति थी। अन्य छोटे अधीनस्थ (बेसाल्स) यह द्वार नहीं बना सकते थे। सामाजिक हैसियत बताने वाले ये सभी

चिह्न बिना वर्ण पर ज्यादा विचार किए ही प्रदत्त किए जाते थे। केवल वे ही लोग जो अपनी भूसंपदा के कारण उच्च सैनिक और राजनीतिक हैसियत रखते थे, सामाजिक दर्जा बताने वाले इन प्रतीक–चिह्नों के हकदार थे।

मध्यकाल में कारीगरों और व्यापारियों को सैनिक और प्रशासनिक दर्जा बताने वाली सामंती उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। विजयसेन के देवपारा अभिलेख से पता चलता है कि शूलपाणि, जो वारेन्द्र का कारीगर–प्रधान था, रणक उपाधि धारण करता था।[13] इससे उसकी सामाजिक हैसियत अवश्य बढ़ी होगी। ठाकुर, राउत, नायक, आदि जैसी कुछेक उपाधियाँ केवल क्षत्रियों या राजपूतों तक ही सीमित नहीं थी। ये उन कायस्थों और अन्य जाति के लोगों को भी प्रदान की जाती थीं जिन्हें भूमि का दान दिया जाता था और जो सेना में नौकरी करते थे। यही कारण है कि आधुनिक काल से भी विभिन्न कोटि के ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों, नाइयों और ऐसी ही तथाकथित निचली जातियों के बीच ठाकुर की उपाधि का प्रचलन है।

पूर्व मध्यकाल में राजाओं द्वारा पुरोहितों, मंदिरों और अधिकारियों के नाम भूमि या भू–राजस्व का निरंतर हस्तांतरण होते रहने के चलते लिपिक या कायस्थ समुदाय का उत्थान और विकास हुआ। भूमिसमनुदेशन (सुपुर्दगी) का लेख्य (दस्तावेज) तैयार करने के लिए तथा भूमि, ग्राम और अनुदान में दी जाने वाली राजस्व की क्रमशः बढ़ती मंदी का लेखा–जोखा रखने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लिपिक और अभिलेखपाल (रेकार्डकीपर) रखने पड़े होंगे। गुप्तकाल से ही भू–सम्पत्ति के बंटवारे की विधि (कानून) चली। इसके कारण भूमि के टुकड़ों में बंटने की शुरूआत हुई और इसके चलते ही अलग–अलग प्लॉटों के ब्योरे रखना आवश्यक हुआ। विधि–ग्रन्थों में सीमा–विवाद एक महत्वपूर्ण अध्याय है। अभिलेखों की सहायता के बिना आसानी से इन विवादों का निपटारा संभव नहीं थ। आगे, सामंतोपसामंतीकरण के कारण कभी–कभी एक ही प्लॉट के चार–पाँच दावेदार बन जाते थे। पहला उस पर स्वामी के रूप में, दूसरा स्वामी के अधीनस्थ के रूप में, तीसरा उप–अधीनस्थ (सब बेसाल) के रूप में और चौथा वास्तविक कृषक के रूप में दावेदार हो जाता था।[14] इसलिए गाँव और जमीन का अभिलेख (खतिहान) सावधानी से रखना होता था ताकि भूमि का विवाद, जो अक्सर हुआ करता था, रोका और तय किया जा सके।

अभिलेख संबंधी यह सारा कार्य एक लिपिक–वर्ग द्वारा संपन्न होता था जो अनेक नामों से जाना जाता था जैसे कि कायस्थ, करण, करणिक, अधिकृत, पुस्तपाल, चित्रगुप्त, लेखक, दिविर, धर्मलेखिन, अक्षरचण, अक्षरचंचु, अक्षपटलिक, अक्षपटलाधिकृत आदि। जिस प्रकार वैदिक काल के सोलह प्रकार के पुरोहितों से एक ब्राह्मण वर्ग बना उसी प्रकार प्रारंभ में कायस्थ भी करीब–करीब बारह प्रकार के लिपिकों और अभिलेखपालों से बना एक वर्ग था। कालक्रम में अन्य प्रकार के अभिलेखपालों को भी कायस्थ कहा जाने लगा। प्रारंभ में उच्च वर्गों के साक्षर लोग, जनसमुदाय की राजस्व और प्रशासनिक जरूरतें पूरी करने के लिये, कायस्थ या लिपिक (कातिब) के रूप में बहाल किए जाते थे। कल्हण ने लिखा है कि शिवरथ नाम का एक ब्राह्मण कायस्थ अधिकारी के रूप में बहाल किया गया था।[15] लोकनाथ जो पिता के पक्ष से ब्राह्मणवंशी था, करण था।[16] लेकिन धीरे–धीरे विभिन्न वर्णों से आये इन लिपिकों (कातिबों) के अपने–अपने मूल वर्ण से वैवाहिक और अन्य संबंध विच्छिन्न हो गए और ये लोग इस नए समुदाय तक ही अपने सारे सामाजिक संपर्क रखने लगे। उन्होंने वर्गाभ्यन्तर असगोत्र विवाह–प्रथा चलाई। वर्ण–व्यवस्था में कायस्थों के लिये स्थान खोजने की समस्या से ब्राह्मण स्मृतिकार (विधि–निर्माता, लॉ गिवर्स) दुविधा में पड़ गए और इन्होंने कायस्थों को शूद्र और द्विज दोनों ही वर्णों से जोड़ दिया। चूँकि कायस्थों की उत्पत्ति के विषय में धर्मशास्त्र के वचन अस्पष्ट हैं, और ऐतिहासिक उदाहरण ऐसे नहीं हैं जिनसे उन्हें किसी एक वर्ण में रखा जा सके, इसलिए हाल में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इन्हें शूद्र और इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ब्राह्मण कहा है।

पेशेवर शिक्षित जाति के रूप में कायस्थों के उदय से स्वाभावतः लिपिक और कातिब के रूप में ब्राह्मणों का एकाधिकार नष्ट हो गया। मध्यप्रदेश में चंदेल और कलचुरि राजाओं तथा कर्णाटक और उड़ीसा के राजाओं के यहाँ कायस्थ मंत्री थे। ब्राह्मणों को इससे रोष हुआ, क्योंकि ऐसे उच्च पदों पर अधिकतर वे ही रखे जाते थे। वे कायस्थों से भी नाराज हुए, क्योंकि वे ही भूमिदान का अभिलेख रखने लगे जिनसे ये ब्राह्मण मुख्यतः संबद्ध थे। लिपिक (कातिब) और अभिलेखपाल के रूप में कायस्थों ने ब्राह्मणों को सदा तंग किया होगा, जो दानग्रहीताओं में भारी संख्या में थे। इसीलिए ब्राह्मणों के ग्रन्थों में कायस्थों का गुण–वर्णन नहीं हुआ है। यद्यपि इनका सर्वप्रथम उल्लेख ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी में ही स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने किया है।[17] लेकिन वहाँ भी इनका चित्रण प्रजापीड़क के रूप में ही है। बारहवीं शताब्दी आते–आते कायस्थों को बदनाम करने की प्रवृत्ति पराकाष्ठा पर पहुँच गई। इनकी निन्दा कल्हण की राजतरंगिणी[18] की प्रिय विषय–वस्तु है जिसकी पुनरावृत्ति थोड़े से हेरफेर के साथ अनेक परवर्ती ग्रन्थों में भी हुई है।

उत्तर भारत के ग्रामांचलों में महत्तर नामक एक ग्रामस्तर अधिकारी और मुखिया वर्ग का उदय हुआ, जिसे भूमिदान और आदान–प्रदान संबंधी बातों की जानकारी दी जानी थी। उसका गाँव की भूमि में पर्याप्त हिस्सा होता और वह ग्राम–प्रशासन का जिम्मेदार होता था। यदि ईस्वी सन् 920 के करीब रचित हरिषैणाचार्य के बृहत्कथाकोष को प्रमाण मानें तो यह दीखायी पड़ेगा कि गांव का महत्तरगाँव के आसपास का चारागाह अपने कब्जे में रखता था और उसके लिए वह शासक को एक हजार घड़ा घी देता था।[19] यह समृद्ध वर्ग, जिसका उल्लेख गुप्तकाल और उसके आगे की ग्राम–व्यवस्था में मिलता है, वर्ण और जाति की सीमाओं से परे था। यह प्रतीत होता है कि यद्यपि हरेक गाँव में इस वर्ग की भूमि थी, फिर भी इसे

बराबर वही धर्म–विध्यात्मक हैसियत (रिचुअल स्टेटस) नहीं मिलती थी। इस उपाधि के आजतक विद्यमान रूप जैसे कि महतो, मेहता, महथा, मलहोत्रा, मेहतर, आदि उच्च और निम्न दोनों ही जातियों में मिलते हैं। यदि इन परिवारों के ऐश्वर्य में हुए उतार–चढ़ाव को छोड़ भी दें तो भी यह प्रतीत होगा कि कम से कम कुछेक मामलों में, इनके मध्यकालीन पूर्वज ग्रामप्रधानों की हैसियत रखने वाले समृद्ध जन थे। यही बात पश्चिम भारत के पट्टलिक नामक ग्रामप्रधान के बारे में कही जा सकती है। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के अभिलेखों में उल्लिखित ये पट्टलिक सदा एक ही जाति के नहीं होते थे और न इनके आधुनिक वंशज आधुनिक पाटिल या पटेल ही एक जाति के हैं। इसी प्रकार गावुन्ड नामम ग्राम–अधिकारी और मुखिया भी, जिसे मध्यकालीन दक्कन में भूमि तथा राजस्व और प्रशासनिक अधिकार दिए जाते थे, किसी खास जाति के नहीं होते थे। इनके आधुनिक प्रतिनिधि जिन्हें मैसूर में गौड़ कहा जाता है, शूद्र समझे जाते हैं।

आर्थिक क्षेत्र में सामन्तवाद का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा विभिन्न सामन्ती इकाईयाँ आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों में परिवर्तित हो गयी। सामन्तों में स्थानीयता की भावना बड़ी प्रबल होती थी। उन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों में बसे हुए व्यापारियों एवं व्यवसायियों को दूसरे स्थान में जाने पर पाबन्दी लगा दिया। फलतः व्यापार वाणिज्य का पतन हो गया तथा सामाजिक गतिशीलता अवरूद्ध हो गयी।

सामन्त अपने क्षेत्रों में जनता से बेगार[20] हासिल करते थे और नयी–नयी चुंगियाँ तथा बाट माप का प्रयोग करते थे जिसके कारण वाणिज्य को बहुत दुर तक करना लाभकारी नही रह गया था। अनेक छोटे सामन्त व्यापारिक काफिलों को लूट लिया करते थे। डा0 दशरथ शर्मा[21] के अनुसार चौहानों की नाडौल शाखा का संस्थापक व्यापारिक काफिलों को लूट लिया करता था परिणामतः व्यापार वाणिज्य की हानि हुयी और समाज अधिकाधिक कृषि प्रधान हो गया। सामन्तों के द्वारा बेगार के दुरूपयोग के कारण मुद्रा का प्रचलन लगभग बन्द हो गया क्योंकि सामन्त उसके बदले में कुछ भी अदा नही करते थे परिणामतः गाँव एक बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में उदित हुये और धीरे–धीरे मुद्रा आधारित आंतरिक व्यापार भी समाप्त हो गया।

जैस–जैसे भूमि दान की प्रक्रिया बढ़ती गयी सामाजिक जीवन में परिवर्तन आते गये कृषि के महत्वपूर्ण हो जाने के कारण प्रत्येक वर्ण के लोग कृषि कार्य में संलग्न होने लगे और धीरे–धीरे उनकी स्थिति भी शूद्रों के बराबर होने लगी जैसे गुप्तोत्तर काल में असत् क्षत्रियों का वेदों के द्वारा कर्मकाण्डों की मनाही थी। इनके कर्मकाण्ड पुराणों के मन्त्रों के द्वारा होते थे इस प्रकार से अलबरूनी कहता है कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पढ़ने की मनाही थी।[22] कृषि कार्य उपयोगी होने के कारण ब्राह्मण भी इसे अपना चुके थे। खेतीहार ब्राह्मण के असंख्य उल्लेख इस समय प्राप्त होते है। विवेच्य काल में वर्ण व्यवस्था का सुचारू क्रम किसी भी प्रकार से दृष्टिगोचर नहीं हुआ। शूद्रों में ही सत् शूद्रों को पूर्व धर्म और पंचमहायज्ञ के माध्यम से धार्मिक कार्य करने की अनुमति मिल गयी थी।

भूमि दान से जन जातिय तत्व समाज की मुख्य धारा में सामिल होने लगे फलस्वरूप अछूतों की संख्या में वृद्धि हुयी। अलबरूनी ने विवेच्य काल में अछूतों की सबसे लम्बी सूची प्रस्तुत करता है।[23]

भूमि दान के कारण कृषि में दासों का उपयोग बढ़ गया। याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार मिताक्षरा में 15 प्रकार के दासों का उल्लेख किया है।[24] गुजरात में लिखे गये ग्रन्थ 'लेखपद्धति'[25] और जैन ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाका पुरूष्चरित'[26] दासों के दैयनीय स्थिति का विवरण देते है।

स्कन्द पुराण और भागवत् पुराण बंधुआ मजदूरी का उल्लेख करते है। ह्वेनसांग और इत्सिंग के विवरणों से स्पष्ट है कि पट्टेदार भूमि जोतते थे और बड़े–बड़े विहार तथा मठ अपनी भूमि पट्टे पर दिया करते थे।

सामन्तवाद का प्रभाव स्त्रियों की स्थिति पर भी दृष्टिगोचर हुआ अल्प आयु में उनका विवाह, समाज में बहुपत्नी विवाह, सती प्रथा, जैसे तत्व सामन्तवाद से अधिक प्रभावित हुये।

धर्म के क्षेत्र में भी सामन्तीय प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। ब्राह्मण जिन्हें भूमि दान जन जातिय क्षेत्रों में प्राप्त होता था आर्थिक रूप से जन जातिय तत्वों पर निर्भर थे। इसलिये जन जातिय प्रभावों को धर्म में समाहित करना अवश्यक था ब्राह्मणों के अलावा जैन एवं बौद्ध भिक्षुओं की यही अवस्था थी। धार्मिक सम्प्रदायों ने भी सामन्ती विलासिता एवं वैभव के जीवन को अपनाया। मठाधीश सामन्ती उपाधियाँ धारण करने लगे तथा मन्दिरों में देवताओं की उपासना भी ठाठ–बाट के साथ सम्पन्न होने लगी।

निष्कर्षतः सामन्ती मनोवृत्ति का विकास समाज के विभिन्न अंगों में हुआ। आडम्बरपूर्ण जीवन, विलासतृप्ति सैनिक संगठन पर समाज के लोगों का आकर्षण अधिक था। सामन्तवाद के कारण समाज में स्तरानुक्रम अधिक जटिल हो गया। स्थानीयता की प्रवृत्ति से सामाजिक वर्ण व्यवस्था में विश्रृंख्लता बड़ी। अनेक जातियों तथा उपजातियों का विकास हुआ। श्रम आधारित व्यवसाय तथा शिल्प को हीन माना जाने लगा। अस्पृश्यता की भावना में वृद्धि हुई। सामाजिक जड़ता तथा संकीर्णता और बढ़ी। सामन्तोपसामन्तीकरण के कारण आर्थिक इकाइयों का आकार छोटा हो गया था, इससे ऐसी सामाजिक स्तरावली को पनपने का अवसर मिला जिसका आधार कहीं भूमि तथा कहीं भू राजस्व का असमान वितरण था।[27]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *वी0 एन0 एस0 यादव सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इलाहाबाद 1973 पृ0 139–140*
2. *वी0 एस0 अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पटना, 1953 अपेन्डिक्स 21*
3. *वी0 एन0 एस0 यादव सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इलाहाबाद 1973 पृ0 139–141*
4. *मयमत, 29, 80–82.*
5. *81–2–12*

6. 71–33–4, वा0 श0 अग्रवाल, हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन, 3
7. अग्रवाल द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत पुस्तक, पृ0 203
8. पी0 के आचार्य0, हिन्दू आर्किटेक्चर इन इन्डिया एण्ड एब्रॉड, मानसर सिरीज (ऑक्सफोर्ड, 946), vi, 125
9. पी0 के0 आचार्य, पूर्वोद्धृत, vi, 125
10. विनयतोष भट्टाचार्य द इन्डियन बुद्धिष्ट एकॉनोग्राफी (कलकत्ता, 1958) अध्याय 1 और 2
11. इन्डियन फ्यूडालिज्म, पृ0 22–3, 99
12. अपराजितपृच्छा, 81–21–4
13. इंस्क्रिप्शन्स आफ बंगाल, iii, एन0 जी0 मजुमदार द्वारा सम्पादित (राजशाही, 1929), सं0 5, पद 36
14. इण्डियन फ्यूडॉलिज्म, पृ0 153–154
15. काणे, पूर्वोद्धृत, ii, 77
16. ए0 इ0, xv, सं0 19
17. i, 322
18. राजतंरगिणी iv, 620 एवं आगे, viii, 560 एवं आगे
19. वी0 एन0 शर्मा की पूर्वोद्धृत पुस्तक की पृ0 311 पर उद्धृत
20. रामशरण शर्मा – भारतीय सामंतवाद पृ0 78–79
21. डा0 दशरथ शर्मा अर्ली चौहान डाइनेस्टी दिल्ली 1959
22. साचू ii 136
23. सांचू i 101–2
24. मिताक्षरा, याज्ञ0 1, 318
25. लेखपद्धति पृ०–50
26. त्रषष्टिशलाका पुरुषचरित अनुवाद 1 पृ०–146
27. आर०एस० शर्मा पूर्व मध्य काल में सामाजिक परिवर्तन (500–1200 ई०) दिल्ली, 1975, पृ०–4